तृतीय अध्याय

" समस्याएँ : स्वरूप, वर्गीकरण एवं विशेषताएँ "

" समस्याएँ : स्वरुप, वर्गीकरण एवं विशेषताएँ "

गुफाओं में रहने वाले आदिम मानव से लेकर 'आधुनिक' मानव तक सभी 'समस्या' जैसे छोटे शब्द से जकड़े हुये हैं। कोई भी इससे पलभर भी छूटकारा पा नहीं सकता। समस्या हमारे जीवन का एक अंग बन गया है। सभी पर उसका शासन चल रहा है। 'समस्या' इस शब्द को जानना समझना और समझाना एक पहेली सी बन जाती है।

3.1 समस्या : अर्थ-

चित्रकाव्य के सात मेदों में से 'समस्या' भी एक है, इसका लक्षण निरुपित करते हुए पुराणकार ने कहा है -

" सुशिलष्टवद्यमेंक यन्नानाश्लोकोश निर्मितम

सा समस्या परस्या ऽऽ त्मपस्यो: कृति संकरात "

संस्कृताचार्यों ने समस्या का केवल यही अर्थ लगाया है की 'समस्या' वह है जिस मे अपनी एवंम दूसरे की रचना का संगठन अथवा समन्वय हुआ हो" [1] हिंदी विश्वकोषकार ने इस अर्थ के साथ साथ समस्या का अर्थ "संघटन, मिश्रण, मिलने की क्रिया, कठिन अवसर या प्रसंग" [2] लिया है। मानक अंग्रेजी हिंदी कोशकार ने "उलझन, कठिन प्रश्न, पहेली, दुर्बोध बात, व्यूह, प्रहेलिका" [3] इस अर्थ में अंग्रेजी शब्द का अर्थ बतलाकर कहा है - "समस्या नाटक, समस्या उपन्यास वह नाटक या उपन्यास जिसमे किसी सामाजिक अथवा अन्य समस्या का निरुपण किया गया हो।" [4] करुणापति त्रिपाठी ने भी "कठिन अवसर या प्रसंग" [5] के ही अर्थ में इसे स्वीकार किया है।

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि समस्या एक उलझन एवंम कठिन अवसर या प्रसंग के सिवाय और कुछ भी नहीं है। समस्याओं को जानने के लिए समग्र व्यापक दृष्टिकी आवश्यकता है। समस्या एक जटिल प्रक्रिया है। एक समस्या दूसरी समस्या को जन्म देती है। एक समस्या द्वारा अनेक समस्याओंका उद्भव होता है। मानो 'रक्तबीज, राक्षस' जैसा वरदान उन्हें प्राप्त हो गया हो।

3.2 समस्या : स्वरुप -

मनुष्य समस्या से दूर भागना चाहता है। लेकीन 'समस्या' बिना जीवन अधुरा, अरुचिपूर्ण और जड़वत बन जायेगा। बहती हुई 'सरिता' की तरह रुकावटों और समस्याओं से टकराकर नया मोड लेकर अलग राह पर बहते रहने का नाम जीवन है।

समस्या की कोई निश्चित क्षेत्र-सीमा नहीं आंकी जा सकती। प्रकृतिगत समस्याओं से जादा मानवनिर्मित समस्याओं के कारण मानव जात अधिक मात्रा में प्रभावित है। एक ही घटीत घटना के हर पहलू से नई समस्या दिखाई देती है, लेकीन अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से समस्याओं के विस्तार को विभिन्न परिपाश्वों में विभाजित किया जाना उचित होगा। हम सामान्य रुप से समस्याओं को दो विभागों में विभाजित कर सकते हैं।

1) व्यक्तिगत तथा आंतरिक समस्या

2) बाह्य समस्या

यह दो विभाग परस्परावलंबी होते है। लेकिन जादा मात्रा में व्यक्तिगत आंतरिक समस्या मनोविज्ञान से संबन्धित है। इस के प्रभाव से ही बाह्य समस्या का निर्माण होता है। बाह्य समस्या में समाज अभिप्रेत है। हिंदू शास्त्रो में मनुष्य के पाँच शत्रुओं काम, क्रोध, मद, लोभ, इर्ष्या और मोह की चर्चा हुई है। इसमें कोई एक दुर्गुण समस्या निर्माण की क्षमता रखता है। "मुलतः मनुष्य न बुरा है, न भला, फिर जो एक बात मे बुरा है, वह दूसरी बात में अच्छा भी हो सकता है। हमारे मानस की ग्रंथियाँ निरंतर खुलती और बंधती रहती हैं।" [6] मनुष्य के विकास के साथ-साथ उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता रहता है, परंतु इस के लिए वह अधिक प्रयास करने की इच्छा नहीं रखता। विभिन्न संदर्भो में व्यक्ति जब प्रकृति और व्यवहार का अवलोकन करना आरंभ कर देता है। उसके मन मे रुचि, अरुचि के भाव और असंख्य जटिलताएँ आने लगती है " मनुष्य इच्छाओं का दास है और इच्छाएँ सदैव अतृप्त रहती है। यह अतृप्ति कालांतर में जीवन में समस्याओं का जाल सा फैला देती है।" [7] आज प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी स्वार्थो में डुबा हुआ है, उन्हें पूरा करने के लिए वह कई प्रकार के अनुचित कार्यों का सहारा लेता है। मनुष्य जान बुझकर अथवा अनजाने में कई अनैतिक गलतियाँ करता हैं। हर कदम पर पक्षभ्रष्ट हो जाता है। इससे स्वयं उस में और समाज में बुराईयों का जन्म होता हैं।

शक्तिशाली कमजोर का शोषण करता है। यह जंगलराज का कानून समाज मे निरंतर चलता आया है। किसी एक व्यक्ति का सुख - चैन दूसरे के लिए दु:खद और पीड़ादायक हो सकता है। इस बात को जान बुझकर भूलते हुये अपनी आकांक्षा को पुरा करने के लिए व्यक्ति न जाने कितनों पर अपना बलपूर्वक अधिकार जमाकर मनचाही 'चीज' छीन लेता है।

''समाज के सम्यक संचलन के लिए मनुष्य ने कुछ मान्यताएँ निर्धारीत की है जिन्हें मूल्य कहाँ जाता है '' [8] ''मूल्य समाज की वह आधारशिला है जिसपर सभ्यता और संस्कृति का भव्य प्रसाद निर्मित होता है।'' [9] लेकिन जब व्यक्तिगत मूल्य और सामाजिक मूल्य में कोई संतुलन नहीं रहता उस वक्त समस्या का निर्माण होता है। मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी यह है। की उसे अपने में कोई दोष नजर नही आता। समाज में व्याप्त बुराईयों का दोष दूसरों को देने में वह सिध्दहस्त होता है।

समस्या निर्माण द्वारा अपने जीवन को दु:खपूर्ण और त्रासद बनाने का दायित्व स्वयं मनुष्य का ही है। ''परिवर्तन मानव सभ्यता की नियति है। विचार, रहन-सहन एवं क्रिया-कलाप की दृष्टि से समाज में निरंतर परिवर्तन की प्रक्रिया गतिमान है। परिवर्तन की यह क्रिया द्वंदात्मक है। मनुष्य समय की गति के साथ अन्य समस्याओं एवं संस्कृतियों के संपर्क में आकर नवीन उपलब्धियाँ प्राप्त करता है।''[10] परिणाम स्वरुप पुराने विचार छिन्न-भिन्न होते है। और नव निर्माण होते है। बदलनेवाली तथा बढ़ती आवश्यकताओं के कारण मनुष्य का जीवन हमेशा अभावों से घिरा रहता है। समाज के दृष्टिकोण, विचार, मूल्य, परम्पराएँ बदलती है। व्यक्तिचेतना का विकास और सामाजिक चेतना का ह्रास तेज रफ्तार से होता है। ऐसे में समस्या का प्रादूर्भाव हो जाता है।

जब कभी व्यक्ति के निजी स्वार्थ, लोभ, अहंकार प्रवृत्ति बढ जाती है तब प्रेम सेवा, ममता, दया, सहानुभूति, परोपकार आदि मूल्यों का अवमूल्यन करके व्यक्ति अपने अहम के अस्तित्व को बनाए रखने के प्रयास में समस्याओं को जन्म देता है। इस तरह '' सामाजिक व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यों के साथ गैर मूल्य भी विद्यमान होते है। सामाजिक व्यवस्था की सुरक्षा, शांति व प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि इस प्रकार के गैर मूल्यों को पनपने से रोका जाय और पनपे हुए गैर मूल्यों को सुधारा जाय'' [11] तभी हम मानवनिर्मित समस्याओं का हल निकालने में कुछ हदतक सफल हो सकते है।

3.3 समस्या : आधुनिक समाज -

सृष्टि के आदिम युग से ही मानव अपने जीवन की प्रगती एंव उन्नति के हेतु प्रयत्नशील रहा है। इस प्रयत्नशीलता के कारण जीवन के हर क्षेत्र में वह संघर्षरत रहता है। सफलता प्राप्त करने की लालसा और अपना अस्तित्व बनाये रखने की कोशीश करता आया है। आइनस्टाईन, एडिसन जैसे कई शास्त्रज्ञोंने भौतिक जीवन बदल डाला। प्रथम और द्वितीय महायुध्द ने तो पूरे विश्व को झंझोड डाला। दूसरी तरफ संसार को मार्क्स, फ्राईड, डार्विन और महात्मा गांधीने बहूत प्रभावित किया हैं। आर्थिक मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक और अध्यात्मिक क्षेत्रों में इन सभी महापुरुषोंने अभूतपूर्व क्रांन्ति को जन्म दिया है। हर क्षेत्र के पुराने संदर्भ और दृष्टिकोण चकनाचूर हो गये और नये दृष्टीकोण स्थापित हो गये और समाज में तेजी के साथ परिवर्तन आने लगा।

कार्ल मार्क्स के अनुसार " अर्थ ही जीवन का विधायक है। युग का राजनैतिक और सामाजिक घटना-क्रम तात्कालिक आर्थिक प्रतिक्रिया से प्रभावित रहता है और सामाजिक तथा राजनैतिक विकास आर्थिक वर्गो के संघर्ष के आधारपर होता है।" [12] आज के युग में हमारे सामाजिक सम्बध ही नहीं, हमारी सूक्ष्म और कोमल भावनाएँ भी बदल गयी हैं। प्रेम, दया, सहानुभूति, सन्मान, आदर, वात्सल्य, माया, ममता, मोह, सहिष्णूता, देशभक्ति भी जैसे वैज्ञानिक और व्यवहारिक आधार की मांग कर रहे है। सभी पारिवारिक संबंधों में 'समझौता' 'व्यवहारिकता' यह नये शब्द आकर चिपक गये है।

पाश्चात्य संस्कृति के आक्रमण के परिणामस्वरुप संयुक्त परिवारों का विघटन-ऱ्हास होकर स्वतंत्र परिवारों की वृध्दि हुई हैं। व्यक्ति आत्मकेंद्रीत और लालची बन गया है। "आर्थिक वैषम्य के परिणामस्वरुप आज सामान्य व्यक्ति के जीवन का सन्तुलन बिगड गया है। मध्य वित्त वर्ग के लोग इस यंत्रणा से पीड़ित हैं। मध्यवर्ग, निम्नवर्ग पर खडा होकर उच्च वर्ग के रंगीन सपनें देखता है। अपनी सीमित आय में उच्च वर्ग से स्पर्धा करना चाहता है।" [13] समाज के सभी वर्गों ने उत्पादन और उपभोग की प्रक्रियाओं में अन्तर आने से कुण्ठा, घुटन, निराशा बढ़ने लगी। परिणामस्वरुप समाज में समस्याएँ बढ़ने लगी।

मार्क्स के आगमन के कारण आर्थिक समस्याओं को नई दिशा मिली। शोषीत लोगों को नई रोशनी मिलने के कारण उनके व्यक्तित्व में नयी आशा का संचार होने लगा। वर्तमान समाज मे अर्थ के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा। समाज आर्थिक वैषम्य के प्रति भी विद्रोह के स्वर मुखरित हुए हैं।

13816
A

3.4 समस्या : आधुनिक हिंदी नाटक -

आधुनिक युग की वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक चिन्ताधारा के प्रभाव से भारतीय सामाजिक जीवन पर्याप्त आलोकित हुआ है। जीवन के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांतिकारी परिवर्तन दृष्टिगत हुएहो उसका प्रतिबिम्ब नाटक साहित्यपर पड गया। "सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखे गए आज के नाटकों में सामान्य जन-जीवन की निराशा, कुंठा, संत्रास और द्वितीय विश्वयुध्द के फलस्वरुप तनावपूर्ण भावनाएँ, भोगवादी संस्कृति और मानवीय मूल्यों और संबंधो के ऱ्हास की अभिव्यक्ति मिलती है और जिनमें यथार्थवादी चेतना ओतप्रोत है।" [14] विभिन्न नाटककारोंने नाटक को इसतरह प्रयुक्त किया जिससे समाज का ध्यान समस्याओं की और आकृष्ट किया जा सके, लोगों के विचारों को आंदोलित किया जा सके।

समस्या मूलक नाटकों में कल्पना व्यवहारिक और उपयोगितावादी दृष्टि से होती है। जिसका लक्ष जीवन की विकृतियों और विसंगतियों का पर्दाफ़ाश करे। सर्वसाधारण व्यक्ति के दैनन्दिन जीवन-व्यापारों से नाट्य स्थितियाँ एवं घटनाएँ संकलित की जाती है। यह स्थितियाँ एवं घटनाएँ जीवन के अभाव पक्ष को उजागर करती है। संदेश-गर्भित, उपयोगितावादी दृष्टि यह उसकी विशेषता होती है। समस्या नाटक यह समस्याओंसे हमे अवगत करता है। शोषण और अन्याय का विरोध करता है। विचारों का महत्व देकर जीवन की लघुता में अन्तर्निहित वास्तविकताओंका दर्शन किया जाता है।

प्राचीन नाटकों के पात्र धीरोदात्त, भावनाओंपर नियंत्रण रखनेवाले, क्षमाशील और विनम्र रहते हैं। लेकिन इसके विपरीत आज के जिन नाटकोंमें समस्याओंका चित्रण किया है उनके पात्र यथार्थवाद की धरातलपर चलते है। " वे (पात्र) अपनी दुर्बलताओं एवं सबलताओं को लिए हुए सर्व-सामान्य प्राणी होते हैं। वे परिस्थितियों के स्वामी नहीं अपितु दास होते हैं। उनमें पशु-सुलभ प्रवृत्तियों का प्रवाह भी रहता है। 'जीव-शास्त्रीय' समझी जाने वाली लालसाओं से वे मुक्त नहीं होते हैं। मूलतः यथार्थवाद का आधारफलक अपनाने के कारण समस्या - नाटक की चरित्र-सृष्टि का भी यही स्वरुप होता है। ये भौतिक जीवन से भिन्न किसी चरितार्थता का लक्ष नहीं रखते" [15] परिणामस्वरुप नाटकों में आये हुये पात्र दर्शक अथवा पाठक को परिचित जान पडते है। उन्हें लगता है की वह अपनी जीवन की समस्याएँ असल रुप में देख रहे हैं। कभी कभी नाटककार विचारों को समस्या के रुप में प्रस्तुत करने में इतना मशगुल हो जाता है

कि पाठक को ऐसा प्रतीत होता है जैसे समस्या उस पर थोप दी गई है। लेकिन ऐसा कभी-कभी होता हुआ दिखाई देता है।

नाटकों में समस्याओं का चित्रण किया जाता है उन नाटकों में स्थान, समय और व्यापार की एकता का सूक्ष्मता के साथ निर्वाह किया जाता है। "समस्या-नाटककार के समस्या-चित्रण में भावुकता का अतिरेक नहीं मिलेगा। उसकी सृजन-प्रक्रिया में कल्पना-शक्ति का प्रयोग नहीं होता समस्या-नाटक में कल्पना व्यवहारिक और उपयोगितावादी दृष्टि से शासित होती है जिसका लक्ष जीवन की विकृतियों का निदर्शन होता है। युग-जीवन की विकृतियों के प्रति वितृष्णा का भाव जागृत करते हुए वर्ण्य-समस्या के प्रति प्रेक्षक के चिन्तन को उद्‌बुध्द कर देना समस्या-नाटक में समस्या-चित्रण की प्राथमिक उपलब्धी है।"[16] इस प्रकार नाटककार समाज-परिवर्तन के साधन के रुप में नाटक का उपयोग करता हुआ दिखाई देता है।

नाटककार ऐसे पात्रोंका निर्माण अपने नाटक में करता है जो कभी भी नाटक में व्याप्त समस्या-चित्रण को कम बाधा पहुचाते हुये दिखाई देते हैं। नाटकों के पात्र सामान्य प्राणि की तरह अपने चरित्र में अच्छाई-बुराई दोनों को लिये रहते है। परिस्थितियों के आघात से वह टूटते और निर्मित होते है। उनके चित्रण मे भावुकता का अतिरेक नहीं दिखाई देता। आवश्यकता के अनुसार ही उनका उपयोग किया जाता है। पात्रों के संघर्ष में बाह्य संघर्ष कम और अंतर्गत संघर्ष की जादा व्याप्ति रहती है। समस्यामूलक नाटकों का उद्देश होता है समाज की जो स्थिति है उसका चित्रण जैसा है वैसा ही करना उसके जो जीवन की विसंगतियाँ है, विषमता है उनका स्वरुप स्पष्ट करना यदि संभव हो तो उसपर उपाय ढुंढ़ने का प्रयत्न करना। समस्या के प्रति प्रेक्षक के चिन्तन को उदबुध्द कर देना यह एक उद्देश रहता है। "मध्यमवर्गीय सामाजिक स्थिति, उसके तनाव एंव दबाव उसके विद्रोह परिवार से लेकर राष्ट्र तक के सामाजिक घटकों के साथ अन्तर्बाह्य टकराहटों में अन्तर्निहित नाटकत्व को सामाजिक नाटककार पहचानता है। और उसे नाट्य बध्द करता है।"[17] इस प्रकार नाटककार बदलती हुई स्थितियों में समस्याओं को पाठकों के सामने प्रस्तुत करना अपना कर्तव्य मानता है।

" सत्साहित्य वहीं है जिससे समाज का सच्चा कल्याण हो। जो साहित्य सामाजिक, राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय समस्याओं पर प्रकाश नहीं डालता तथा उलझनों को सुलझाने में सहायता नहीं करता वह सच्चा साहित्य नहीं है "[18] यही प्रेरणा लेकर नाटककार समस्याओं के माध्यम से व्यक्ति के

अन्तबाह्य जीवन पर पडे सामाजिक परिवर्तन के विचारों का निरुपण करता रहता है। व्यक्ति और समाज के द्वंद्व के चित्रण द्वारा प्रचलित धारणाओं, परंपराओं, प्रवृत्तिओं का 'नये जीवन' के संदर्भ मे चित्रण करता है। अनेक आवरणों और पडदों के पीछे जो सत्य रुप छिपा गया है यह सभी प्रतिबंधोंको दूर करते हुये नाटककार दिखलाता हुआ दिखाई देता है। समस्या-नाटक में दिखाई देनेवाले पात्र विशिष्ट व्यक्ति से जादा 'प्रवृत्ति' के निर्देशक होते हैं। जिसके माध्यम से पाठकों के विचारोंको आंदोलित करना नाटककार का उद्देश होता है।

3.5 *समस्या : वर्गीकरण -*

डॉ. शंकर शेष जी का नाट्य साहित्य समस्याओंका एक भांड़ार है। नाटक के माध्यम से अनेक प्रकार की समस्याओ पर अत्यंत सजगता से चित्रण किया है। महानगरीय समस्याएँ मध्यमवर्गीय कुंण्ठा, दारिद्रयता, मँहगाई सभी बातोंपर अपनी लेखनी चलाई है। बेकारी, नैतिकता का ऱ्हास, शोषण, अत्याचार, हिंसा आदि के मूल तक पहुंचकर उसका चित्रण किया है। पढ़ते पढ़ते पाठकोंकी मती दंग रह जाती है। शंकर शेष के नाटकोंमें बहुत प्रकार की समस्याएँ आती हैं। आलोच्य नाटकों में अध्ययन हेतु हम निम्नलिखीत विभागों में उन्हें विभाजीत कर सकते है।

1) पारिवारिक समस्या
2) आर्थिक समस्या
3) नारी समस्या
4) शिक्षणं व्यवस्था : समस्या
5) मूल्य विघटन : समस्या
6) वर्ग संघर्ष : समस्या
7) धार्मिक समस्या
8) न्याय तथा कानून व्यवस्था : समस्या
9) क्रूरता भरी महत्वकांक्षा : समस्या
10) व्यवस्था का दमन चक्र : समस्या
11) मनोवैज्ञानिक समस्या

निष्कर्ष -

'समस्या' शब्द का प्राचीन काल से अनेक अर्थों में प्रयोग किया गया। परंतु आधुनिक काल में 'समस्या' एक कठिन अवसर, एक उलझन के सिवाय कुछ भी नहीं है। 'समस्या' को सीमा के अंदर हम कैद नहीं कर सकते। समस्या का जन्म 'समस्या' द्वारा ही होता है। एक समस्या अनेक समस्याओंको जन्म देती है। समस्या यह मानव की अतृप्ति, इच्छाएँ, क्रूर महत्वकांक्षा के प्रतिफल के रूप में उभरती है।

व्यक्तिगत मूल्य और सामाजिक मूल्य के बीच जब टकराव की स्थिति निर्माण हो जाती है। तब समस्याओंका निर्माण होता है। समाज द्वारा निर्धारित प्राचीन मूल्यों के बीच गैरमूल्य पनपते है तब समस्या निर्माण होती है।

आधुनिक समाज में ज्ञान के सभी क्षेत्रोंमें जो अभूतपूर्व क्रांति हुई है परिणाम स्वरुप हर क्षेत्र में नये दृष्टीकोण स्थापित हुये हैं। कार्ल मार्क्स, फ्राइड, डार्विन इनके साथ साथ जगतिकरण, वैश्विकरण, राजनीतिक धृविकरण की नयी प्रक्रिया शुरु हो गयी है। इस बदलनेवाले परिवेश के परिणाम स्वरुप 'समस्या' की तरफ देखने का नया दृष्टिकोण मिल गया है।

बदलते परिवेश से नाट्य साहित्य अछूता न रहा। भारतेन्दू काल से लेकर आज तक नाटकों के माध्यम से 'समस्याओं को प्रकट कर के सामाजिक परिवर्तन करने के लिये बहुत सारे नाटककार कटिबध्द दिखाई देते हैं। कल्पना और सौंदर्य से जादा विचारतत्व, सत्य दर्शन, व्यवहार आदि को स्थान मिला। दर्शक और पात्र के जीवन मे साम्य दिखाई देने के कारण पाठकों को नाटकों में अपने जीवन का प्रतिबिम्ब दिखाई देने लगा। समस्याओं को नया स्वर मिल गया। सामाजिक, परिवारिक, धार्मिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक हर क्षेत्र में व्याप्त समस्याओंका मिला जूला रुप एक ही नाटक कें अंतर्गत दिखाई देने लगा।

नाटककार को समस्याओं का चित्रण देशकाल के अनुकूल करना चाहिए। नाटक में चित्रित समस्या में स्पष्ट और व्यापक भाव धारण करने की क्षमता आवश्यक होती है। 'समस्या' चित्रण सिधी सरल शैली में यदि हो तो पाठक तुरंत उससे तादात्म भाव प्राप्त कर सकता है। विचारतत्व भावतत्व और सौंदर्यतत्व में योग्य मात्रा में संतुलन होना आवश्यक है। यदि वह नहीं होता है तब वह नाटक पाठक को जादा प्रभावित नहीं करता। वह मात्र एक विचार ग्रंथ बन जाता है। नाटककार कल्पना से जादा

'वास्तव' का सहारा ले तो निर्धारित उद्देश्यों का निर्वाह करने मे सफल हो सकता है। समस्या चित्रण करते समय बौध्दिक, वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से विचार करना आवश्यक होता है।

भारत की अधिक तर जनसंख्या अशिक्षित है। अशिक्षित वर्ग के लिए नाटक विद्या अत्यंत सफल है। इसके सहाय्य द्वारा 'समस्या' के प्रति जागृति और 'समस्या' निमूर्लन के लिए आधारभूमि का निर्माण हो सकता है। कुंण्ठाओं से ग्रस्ति इस जीवन में एक नई चेतना - नया आत्मबल और नया ढ़ाढस भर सकते हैं।

संदर्भ सूची -

1. डॉ. विमला भास्कर	-हिंदी मे समस्या साहित्य	- पृ. 9
2. सं. नगेन्द्रनाथ वसु	-हिंदी विश्वकोश -23	- पृ. 568
3. सं. सत्यप्रकाश, बलभप्रसाद मिश्र	-मानक अंग्रेजी-हिंदी कोश	- पृ. 1071
4. सं. सत्यप्रकाश, बलभप्रसाद मिश्र	-मानक अंग्रेजी-हिंदी कोश	- पृ. 1071
5. करूणापति त्रिपाठी	-हिंदी शब्द सागर	- पृ. 975
6. उदयशंकर भट्ट	-'नया समाज' भूमिका	- पृ. 56
7. डॉ. विमला भास्कर	-हिंदी मे समस्या साहित्य	- पृ. 10
8. डॉ. रमेश देशमुख	-आठवे दशक की हिंदी कहानी मे जीवन मूल्य	- पृ. 34
9. डॉ. हेमेंद्र पानेरी	-स्वातंत्रोत्तर हिंदी उपन्यास-मूल्यसंक्रमण	- पृ. 2
10. डॉ. गिरिराज शर्मा 'गुंजन'	-हिंदी नाटक मूल्य संक्रमण	- पृ. 173
11. रविंद्रनाथ मुकर्जी	-उच्चतर समाज शास्त्रीय सिध्दांत	- पृ. 394
12. डॉ. गिरिराज शर्मा 'गुंजन'	-हिंदी नाटक मूल्य संक्रमण	- पृ. 49
13. डॉ. गिरिराज शर्मा 'गुंजन'	-हिंदी नाटक मूल्य संक्रमण	- पृ. 146
14. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	-द्वितीय महायुध्दोत्तर हिंदीसाहित्य का इतिहास	- पृ. 181
15. डॉ. मान्धता ओझा	-हिंदी समस्या नाटक	- पृ. 23
16. डॉ. मान्धता ओझा	-हिंदी समस्या नाटक	- पृ. 27
17. डॉ. विणा गौतम	-अधुनिक हिंदी नाटकों में मध्यवर्गीय चेतना	- पृ. 9
18. डॉ. रमेश देशमुख	-आठवी दशक की हिंदी कहानी में जीवनमूल्य	-पृ. 27